पाप की सजा भारी

नम्र सूचन

इस ग्रन्थ के अभ्यास का कार्य पूर्ण होते ही नियत समयावधि में शीघ्र वापस करने की कृपा करें, जिससे अन्य वाचकगण इसका उपयोग कर सकें.

प्रवचनकार और लेखक - प. पू. मुनिराज श्री अरुणविजयजी महाराज

चातुर्मासिक २० रविवारीय - सचित्र जाहिर व्याख्यानमाला

श्री महावीर जैन शिक्षण शिविर

आयोजक - श्री जैन श्वे. मू. त. संघ, उदयपुर

*विषय→ **"माया का परिणाम"**

वि. स. २०४२ भाद्रपद शुदि ९ * प्रवचन-११ * रविवार ता.22-9-85

※ ग्यारहवां प्रवचन→ ※ आठवां पापस्थानक→ "माया"

※ विषय→ "माया का परिणाम"

परम पूज्यपाद परमेश्वर परमेष्ठि चरम तीर्थपति श्रमण भगवान श्री महावीरस्वामी के चरणारविंद में कोटि-कोटि नमस्कार पूर्वक .....

असूनृतस्य जननी, परशुः शीलशाखिनः ।
जन्मभूमिरविद्यानां, माया दुर्गतिकारणम् ।।

—असत्य की जननी (माता), और शील वृक्ष को काटने की कुल्हाडी और(मिथ्यात्व)अज्ञान रूपी अविद्या की जो जन्मभूमि है ऐसी माया सचमुच दुर्गति की कारण है ।

विभाव को स्वभाव—

अनादि-अनन्तकाल से अनन्त संसार में परिभ्रमण करती हुई अनन्त आत्माओं ने जो अपना मूलभूत स्वभाव है उसे तो छोड दिया है और जो अपना स्वभाव नहीं है, विभाव है, उसे ही स्वभाव मान लिया है। जैसे किसी ने रस्सी को ही साँप मान लिया और फिर चिल्लाने लगा, रोने लगा आदि । जैसे किसी ने कांच के चमकते टुकडे को ही हीरा मान लिया, पीली धातु को सोना मान लिया । ऐसे सेंकडो भ्रम मनुष्य में पडे है । क्रोध, मान, माया, लोभ ये हमारा स्वभाव नहीं है परन्तु विभाव है । वि+भाव=

विकृत भाव, विपरीत भाव ! खट्टापन यह दूध का स्वभाव नहीं है। लेकिन फटे हुए दूध का खट्टापन यह विभाव है । विकृत स्वरूप है ।

उसी तरह नम्रता, समता, मृदुता, ऋजुता, आदि आत्मा के मूलभूत स्वभाव कहलाते है। आत्मगुण है आत्मा के स्वरूप है। लेकिन आज संसार में ये गुण नामशेष मात्र क्यों रह गए हैं ? गिने गिनाए व्यक्तियों में ही पाए जाते हैं इसका क्या कारण है । इसके स्थान पर जो विभाव, विकृति हमारे में आई है वह क्या है ?···· समता कम हुई और क्रोध आया । नम्रता–मृदुता कम हुई और मान आया, ऋजुता-सरलता कम हुई और माया आई, सुख-शान्ति संतोषवृत्ति घटते ही लोभ कषाय आकर खडा हो गया ! यही कारण है कि प्रकृति गई और विकृति आइ स्वभाव गया और विभाव आया !

आत्मा का विभावदशा में से स्वभावदशा में आना ही साधना–आराधना, उपासना का मार्ग है। विकृति में से पुन: प्रकृति में आने के लिए ही अध्यात्म का मार्ग है । अध्यात्मशास्त्र ने क्या किया ? दिशा–भ्रष्ट आत्मा को विकृति–विभाव के दोष दिखाकर प्रकृति के गुणों की तरफ आकृष्ट किया, विभाव के परिणाम दिखाकर स्वभाव की तरफ लाने का प्रयास किया। यही अध्यात्म मार्ग का मुख्य कार्य है ।

क्रोधादि कषायों को क्यों अपनाया है ?—

ये क्रोधादि कषाय जब भी आए, जिस किसी के पास आए उस··· नुकसान ही किया है। इसमें कोई संदेह ही नहीं हैं। चोर

को तो चोर ही मानना पडेगा। इसमें तो कोई शंका ही नहीं है। धन-माल चुराया है तो उसने नुकसान ही किया है। और फिर यदि हम चोर को घर रखकर उसका पालन-पोषण करें तो···· उसमें हमारा ही नुकशान है! यह निर्विवाद निःसंदेह है। वसे ही ये कषाय है। इन कषायों ने आत्मा को कर्म से बांधो और फिर संसार में खूब भटकाई। नतीजा क्या आया··· आत्मा को दुःखी-दुःखी कर दी! आज हमने जाना-फिर भी यदि आत्मा को पूछा जाय कि कषायों को क्यों अपनाया है?····तो क्या उत्तर देगी?····

हां... हाँ कषाय तो चाहिए! इसके बिना तो जीवन निर्वाह ही संभव नही है? संसार कैसे चल सकता है? कोई तो कहता है अपनी रक्षा के लिए कषाय जरुरी है। जेसे सीमा पर तैनात खडे एक सैनिक के पाप सुरक्षा हेतु शस्त्र होना जरुरी है उसी तरह हमने यह मान लिया है कि ये क्रोधादि कषाय ही हमारे लिए शस्त्र है। ये शस्त्र का काम करेंगे और हमारी रक्षा करेंगे। इसलिए कई तो कषायों का उपयोग रक्षा के हेतु से करते हैं। वे समझते हैं कषायों से हमारी रक्षा हो जाएगी। किसी के सामने क्रोध करने से मेरा कार्य सिद्ध हो जाएगा। इस तरह कइयों ने कार्य सिद्धि के हेतु कषाय करना जारी रखा है। शस्त्र की तरह सदा पास में रखना भी हानि-कर है। कभी यही शस्त्र हमारा भो वध कर देगा। शस्त्र तो जड़ है। वैसे ही कषाय भो जड है। कर्म बंधा कर आत्मा को दुर्गति में गिरा देंगे। अतः किसी भी हेतु से कषायों को अपनाना उचित तो नहीं ही है। लाभ तो नहीं है।

कषाय जय के लिए वीर प्रभु कैसे हैं ?—

संसार दावानल दाह नीरं, संमोह धूलि हरणे समीरं।
माया रसा दारण सार सीरं, नमामि वीरं गिरिसार धीरं ।।

संसार एक दावानल जैसा है जिसमें जले हुए के लिए वीरप्रभु नीरं अर्थात् पानी के जैसे है। क्रोध दावानल जैसा है। ऐसी क्रोधाग्नि को शान्त करने के लिए वीर प्रभु का स्मरण, वीर प्रभु को किया हुआ नमस्कार पानी का काम करता है। संमोह-मोहरुपी धूली के आवरण, मान-अभिमान रुपी मोह की धूलि के पटलों को दूर हटाने के लिए वीर प्रभु समीर=अर्थात् हवा की तरह उपयोगी है। और मायारुपी कठीन पृथ्वी को फाडने के लिए वीर प्रभु सीरं अर्थात् हल जैसे हैं। और गिरिसार अर्थात् मेरु पर्वत के समान लोभ को शमाने के लिए वीर प्रभु सुमेरु के जेसे धीर-गंभीर है। ऐसे वीर स्वामी को नमस्कार किया गया है। पूज्य हरीभद्रसूरी ने क्रोध, मान, माया, लोभ इन चारों कषायों को जीतने के लिए नीरं, समीरं, सीरं, धीरं की चार प्रकार की उपमा श्री वीर प्रभु को देते हुए स्तुति की है। और इन्हीं चारों से वीर प्रभु ने ऐसे चारों कषायों को जीत लिया है अतः ऐसे कषायविजेता श्री वीर प्रभु को यहां नमस्कार किया गया है। हमारे लिए यह एक आदर्श आलंबन है। हमें भी कषाय विजेता बनना है। क्रोधादि कषायों को जीतना है अतः यह एक उच्च आलंबन, ऊँचा आधार है। अतः यह स्तुती मननीय है।

४ कषायों में माया कषाय—

संसार का लाभ कराने वाले अर्थात् भव परंपरा बढाने वाले चार कषाय है। इनमें तीसरा कषाय माया है। यद्यपि क्रोध को ही मुख्य रुप से कषाय गिनने वाले मोटे स्थूलरुप से देखते हैं अतः मान-माया-लोभादि कषाय नहीं लगते होंगे। कइयों ने तो कषाय को क्रोध का ही पर्यायवाची शब्द मान लिया है। कोई क्रोध करे तो कह देते हैं अरे! इतना कषाय क्यों करते हो? लेकिन माया या लोभ करने पर यह कोई नहीं कहता कि इतना कषाय क्यों करते हो? तो क्या माया और लोभ ये कषाय नहीं हैं? कौन कहता है नहीं है? अवश्य है। माया–लोभ भी संसार बढाने वाले है। इतना ही नहीं क्रोध से भी ज्यादा खतरनाक है। बहुत ज्यादा नुकशानकारक है। जैसे पांचो इन्द्रियों के अपने अपने विषय भिन्न-भिन्न है उसी तरह चारों कषायों का स्वरुप और कार्यक्षेत्र भिन्न–भिन्न है। रोत-भात भिन्न–भिन्न है। तरीका अलग-अलग है! क्रोध का एक आगबबूला होकर गरम होकर अभद्र शब्द बोलकर वातावरण गरम-गरम कर देता हैं! जोरों से बोलकर लोगों को इकट्ठे कर देता है।जबकि मान पद-प्रतिष्ठा,सत्ता, शोभा का इच्छुक है। माया स्वार्थ साधने में लगी है। माया कूटनीति है। और लोभ तो लाभ कराने की सतत चिन्ता में मन को सदा आकृष्ट किये ही रहता है। कामी मन जैसे काम में, सोनी का मन जैसे सोने में, और जुगारी का मन जसे जुगार में लगा रहता है उसी तरह लोभी का मन लाभ में लगा रहता है। अब कुछ मिलेगा, अब कुछ

लाभ होगा। इस तरह मन ललचाया हुआ रहता है। ये चारों ही आत्मा के घातक शत्रु है ! कर्म बंध के कारण है। अतः कषाय है!

इतना ही फरक है कि.... क्रोध साँप की तरह डंक दे के काटता है। तो माया–लोभ– ये चूहे की तरह फूंक मार कर सोते समय पैर की चमडी निकाल लेते है। उस समय फूंक का स्पर्श बडा मीठा-मधुर लगता है। क्रोध भी विष है। लेकिन तेज विष है। २ मिनिट में मृत्यु होती है। लेकिन माया-लोभ-तेज-कडक विष नहीं है, ये *Cold Poision* ठंडे विष है। ये धिरे-धिरे असर करते हैं।

चारों कषाय स्वाद में कैसे हैं?—

प्रत्येक खाद्य पदार्थ का स्वाद होता है ! उसी तरह ये चारों कषाय स्वाद में कैसे होते हैं ? इनके रसास्वाद का अनुभव कैसा होता है ? यदि उपमा देकर देखें तो षडरस में इनका भी रस है। अतः इनका भी रसास्वाद है। उदाहरणार्थ–जैसे क्रोध तेज लाल मिर्चि के जैसा तिखा है। तेज लाल मिर्चि खाते ही जैसे जीभ जलती है, मुंह जलता है। उसी तरह क्रोध के आने से उसके तीखे पने से स्वयं और दूसरा दोनों ही जलते हैं। आग–आग हो जाते हैं। आग की तरह जलने लगते हैं। सारे शरीर में जलन होती हैं। क्रोधी को क्रोध के आगमन पर ऐसे अनुभव होते हैं। मान कषाय खट्टा है। खटाई भी लोगों को प्रिय है। भोजन में खट्टा रस भी चाहिए। इसी तरह जीवन में मान भी चाहिए। ऐसी हमारी

धारणा है। दाल-सब्जी में खटाई अच्छी लगती है उसी तरह मान का सेवन भी अच्छा लगता है।

माया कैसी है ? मिठि है ! जैसे मिठाई प्रिय है। मिठा रस सबको पसंद है। वैसे ही माया भी जीवों को पसंद है।मिठाई खाते समय मिठी लगती है उसी तरह माया का सेवन करते समय माया बडी मिठी लगती है। फरक इतना ही है कि खट्टे–मीटे–तीखे रस का अनुभव जीव जिव्हा इन्द्रिय से होता है जबकि क्रोध, मान, माया, लोभादि कषायों का रसास्वाद अर्थात् अनुभव मन से होता है। मन इन्द्रिय नहीं अतीन्द्रिय है। लोभ नमकीन है। नमक के बिना किसको चलता है ? रोटी, चावल आदि सभी में नमक पडता है। बिना नमक की रोटी, चावल भी अच्छी नहीं लगती। वैसे ही लोभ के बिना किसको चलता है। हर बात में लोभ है। अतः नमकीन के जैसा लोभ है। इस तरह चारों कषायों का भिन्न भिन्न रसास्वाद है। अनुभव है। यह तो सेवन करने वाले को ही अनुभव होता है। हम सभी प्रत्यक्ष जानते है। स्वादिष्ट रसोई जैसे हम नहीं छोडते मिलने पर डट के खाते हैं। वैसे ही रसास्वाद की अनुभूति वाले ये कषाय हम नहीं छोडते। मौका आने पर जी भर कर करते हैं।

१८ पाप में माया का स्थान—

१८ पापस्थानकों में माया को दो बार स्थान दिया गया है। एक तो "आठवें माया"। यहां पर अकेली-माया है। स्वतंत्र माया का ही सेवन है। और १७ वें क्रम पर 'मायामृषावाद'। मृषावाद–

असत्य सेवन के साथ माया को रखी है। यह स्वतंत्र पाप स्थानक बताया है। केवल माया-कपट करना, मायावीवृत्ति का सेवन करना मन में माया रखकर व्यवहार करना यह आठवां पापस्थानक है। जबकि मायापूर्वक असत्य बोलना, मायायुक्त मृषावाद का सेवन करना यह सत्रहवां पापस्थानक है। माया से भी अनेक जीव दुःखी हुए हैं। माया में रही हुई वंचकवृत्ति स्व-पर-उभय को ठगती है। अतः यह भी पाप अवश्य है। योगशास्त्र में स्पष्ट कहा हैं कि—

कौटिल्यपटवः पापाः मायया बकवृत्तयः ।
भुवनं वञ्चयमाना वञ्चयन्ते स्वयमेव हि ॥

कुटिलता करने में मायावि कुशल-चतुर होता है। बगुले के जैसी दम्भी वृत्ति वाले माला-कपट करने वाले पापी माया से जगत् को ठगने जाते हैं लेकिन सही अर्थ में देखा जाय तो वे स्वयं अपने आपको ठगते हैं। यहां माया को 'बकवृत्ति' के जैसी कही है। कुटिल कही हैं।

माया के पर्यायवाची नाम—

कोशकार हेमचन्द्राचार्य महाराज अभिधान चिन्तामणि कोश में माया के लिए अन्य शब्दों का भी प्रयोग करते है—

माया तु शठतां शाठ्यं, कुसृतिर्निकृतिश्च सा ॥
कपटं कैतवं दम्भः, कूटं छद्मोपधिछलम् ।
व्यपदेशो मिषं लक्षं निभं व्याजो .....।

माया, शठता, शाठय, कुसृति, निकृति, कपट, कैतव, दम्भ, कूट, छद्म, उपधि, जल, व्यपदेश, मिष, लक्ष, निभ, व्याज, बहाना,

वंचना, कुटिलता, ठगवृत्ति, विश्वासघात, द्रोह करना, धोखा देना, वक्रता, छलना, लुच्चाई करना, आदि अनेक संस्कृत-हिन्दी में माया के पर्यायवाची नाम हैं। भिन्न-भिन्न रुप में इन शब्दों का प्रयोग लोग करते हैं। लेकिन माया के ही अर्थ में करते हैं। विद्यार्थी चालु परीक्षा में बाहर जाता है, थूकने जाता हुं, पिशाब करने जाता हुं, बार-बार पानी पीने जाता है .. यह सब बहाना है, लेकिन मन में हेतु कुछ और ही भिन्न हे। यही माया का लक्षण है।

माया का लक्षण (स्वरुप)

माया का लक्षण या माया का स्वरुप बताते हुष उपाध्याय विनयविजयजी महाराज सज्झाय में कहते हैं कि—

मुख मीठो जूठो मनेजी, कूट कपट नो रे कोट ।
जीभे तो जी जी करे जी, चित्त मां ताके चोट..।।

रे प्राणी ! म करीश माया लगार.....।

जो मुंह में तो बहुह ही मिठा बोलता है, और मन में झूठ को छिपाये रखता है, कूट-कपट का उसके उपर कोट बनाता है, जीभ से तो जी .. जी.... करेगा, बडाही मीठा लगता है, लेकिन मन में ऐसी चोट रखता है कि कब मोका मिले और इसे ठग लूं। अर्थात् मन में कुछ और रखता है और बाहर बोलने में दिखावा कुछ और ही प्रकार का करता हैं। बोलना कुछ और करना कुछ। कहने-बोलने-करने-विचारने सब में जिसकी भेद नीति है, सब में भिन्न-भिन्न रीति है वह माया का स्वरुप है। किसी में एकरुपता नहीं है। एकवाक्यता नहीं है। कहता है वहां और चलता है कहां....। कहता

है कहां और निकलता है कहां ? यह मायावी का लक्षण है । सत्य को छिपाना और असत्य को ही मीठा बनाकर सत्य का रूप देना । असत्य पर सत्य का ओप चढाना । जैसे कडवी दवाई पर शक्कर का पड चढाने पर गोली मीठि लगती है अतः बच्चे भी अच्छी तरह ले सके । कोई आनाकानी न करे। इसी तरह असत्य पर सत्य की मीठि शक्कर का पड चढा देना जिससे सुनने वाला विश्वास में आ जाय । बात में आ जाय । अपनी बात को मान ले । अर्थात् दो प्रकार की नीति पर, दुहेरी चाल चलने वाला मायावी होता है । मुंह में राम बगल में छुरी यह मायावी की नीति होती है । यही मायावी की पहचान है । दिखावा कुछ और ही ढंग का रहता है और प्रवृत्ति बिल्कुल विपरीत होती है यह मायावी का लक्षण है । दृष्टान्त के रूप में दाम्पत्य जीवन में एक स्त्री की माया जाल देखिए ।—

पत्नी का मायावी नाटक—

वर्णपुर नगर के श्रेष्ठिपुत्र पुण्यसार की शादी पास के गांव के वणिक की कन्या के साथ माता-पिताने कराई थी । लेकिन वह वणिक कन्या पहले से ही किसी दूसरे पुरूष प्रेमी से मिली हुई थी । उसकी बदचाल के करण वह पुण्यसार के साथ रहने में तैयार नहीं थी । जब पुण्यसार लेने आया तो दिखाने के लिए वह साथ चली । रास्ते में एक कूआ आया । पतिने कहा पानी पी लें । फिर आगे बढें । पति पुण्यसार कुँए की पाल पर झूक कर देखने लगा इतने में पीछे से पत्नी ने धक्का मार दिया और भग गई ! ....दौडी

····दौडी घर आ गई । पिताजी! ··· पिताजी! ····सुनिए····सुनिए···· हाय ··· हाय ··· यह क्या हो गया ? हम जा रहे थे ·· रास्ते में चोर मिले, मेरे स्वामिनाथ को खूब मारा ! और कुए में फेंक दिया । मैं तो चोरों के हाथ में से बच के भाग के आ गई । किसी तरह जी बचाया । हजार बात बना दी । और सभी को अपने विश्वास में ले लिया !

मायावी की यही विशेषता है कि वह बात बनाने में इतना चतुर होता है कि कैसा भी पाप स्वयं करके भी····अपना खुद का नाम न आए इस तरह से बात को बना लेता है । किसी को न तो शंका और न तो गंध आए, उल्टे सभी विश्वास में आ जाए ऐसी मायावी की प्रवृत्ति रहती है । योगानुयोग····४-६दिन बाद उस मार्ग से जाने वाले कुछ मुसाफिर लोग उस कुँए पर रूके । रस्सी-बाल्टी कुंए में डाली और पानी निकालना चाहा कि इतने में पुण्यसार ने रस्सी पकडकर बाहर आया । किसी कदर स्वसुर के घर पहुंचा जामात को देखकर सासु-स्वसुर तो खुश हो गए और पूछने लगे आपको कितने चोरों ने मारा ? क्या बहुत मारा ?····खूब पीटा ? आपको ज्यादा चोट तो नहीं लगी ? क्या हुआ ? और हमारी बेटी तो बच कर भाग आई ।· इत्यादि कौतुक वश, उत्सुकतावश कई प्रश्न पूछने लगे । ·· पुण्यसार पत्नी की माया जाल का सारा नाटक अच्छी तरह समझ गया था । पत्नी भी घर में से सब सुनती हुई सामने आई । सासु स्वसुर को इतना आनन्द हुआ कि जामात बच गए है, जिन्दे वापिस घर आए हैं, वे जितने खुश है, उनके मुकाबले में पत्नी बिल्कुल खुश नहीं है । मुँह हंसता

रखकर भी दिल से नाराज है।··· मन में तो ऐसा हो रहा है कि न मालुम··· क्या कर दुं। धरती जगह दे दे तो समा जाउं। लेकिन सरल पति पुण्यसार ने पत्नी का पाप सभी के बीच प्रगट नहीं किया। गिली बाजी समेट ली।

माया का प्रतीक बगुला

जैसे क्रोध का प्रतीक चिन्ह सांप का दिया था, मान के लिए हाथी का था। तो आज माया के लिए यदि किसी पशु का प्रतीक रखना हो तो बगुले का अच्छी तरह रख सकते हैं। और लोभ के लिए....चूहे का रखते हैं। आपने सभी ने बगुले को तो जरुर देखा ही है। तालाब में पानी के बीच खडा रहता है। कितना शान्त और कितना स्थिर खडा रहता है ? उसकी शान्ति और स्थिरता को देखकर ऐसा लगता है कि अच्छे अच्छे योगी भी इतने स्थिर नहीं रहते होंगे। हमें यदि योग-साधना और ध्यान शिखना हो तो बगुले के पास जाकर शिखना चाहिए। लेकिन आप जानते ही हैं कि बगुला क्यों इतना शांत खडा है? वह सिर्फ मछली के इन्तजार में खडा है। क्योंकि यदि शान्त न खडा रहे और हिले-चले तो पानी हिलेगा और पानी के हिलने से मछली भग जाएगी। अतः मछली हाथ में आवे ...इस हेतु से शान्त-स्थिर खडा है। न तो ब्रह्म में लीन है और न ही मन्त्र जाप या ध्यान में स्थिर है। उसका ध्यान तो मछली में है। यह सिर्फ दिखावा है। हम तो मन्त्र जाप या ध्यान जो कि प्रभु का करते हैं, उसमें भी इतनी स्थिरता नहीं रख पाते हैं। लेकिन सीधा-सादा, भोला-भाला दिखने वाला बगुला... देखते

ही दया भी आ जाती है लेकिन छल-कपटी बगुला सिर्फ मछली को खाने के पीछे यह नाटक कर रहा है। वैसा ही मायावी मनुष्य होता है। दिखावा कुछ करेगा लेकिन मन में कुछ और ही है। अतः मायावी को बगुला भगत की उपमा दी जाती है। और नीतिकार बिल्ली की भी उपमा देते हैं। जैसे बिल्ली चूहे को पकडने के लिए गटर के मुंह के पास, बिल के पास छिपकर चुपके से बैठती है। बिल्ली चलती भी है, कूदती भी है, दौडती भी है तो न तो पैरों की आवाज आने देगी और न ही वस्तु के हलन-चलन की आवाज आने देगी। ठिक यही वृत्ति मायावी-स्त्री-पुरुषों में रहती है। वह भी अपने शिकार के प्रति सारी माया जाल का नाटक रचता है।

पत्नी का मायावी नाटक—

चंपानगरी के धनाढ्य-संपन्न जिनदास शेठ अपनी पत्नी के साथ दाम्पत्य जोवन शान्ति से बिता रहे थे। शेठ ने संतान के अभाव में धर्मध्यान में मन लगाया, लेकिन पत्नी की वासना की आग न बूझी। पति से संतुष्ट न होने पर पत्नी किसी दुसरे पुरुष के साथ मिल गई। उसे अपना यार–प्रेमी बना लिया और मौका देखकर घर बुलाती.... और उससे देहसुख भोगती थी। संसार के खराब पाप करने के लिए एकान्त और अन्धेरा पापो को चाहिए। वह उसे प्रिय है। एकान्त और अन्धेरा मिलते ही कईयों की पाप–लीला शुरु हो जाती है। पाप के लिए यह भी एक निमित्त है। यही बात किसी योगी, ध्यानी के लिए भी सिद्ध होती है। अच्छा साधक भी एकान्त और अन्धेरा–निर्जन–नीरव शान्ति का स्थान

पसंद करेगा। क्योंकि.... एकान्त में उसकी साधना में बाधा नहीं आएगी एकचित्त से ध्यान, जाप कर सकेगा। यही बात पापी को भी पसंद है। उसे भी यही चाहिए। रात्रि होते ही पति घर के अन्दर की अन्धेरी कोठरी में जाकर ध्यान में स्थिर खडे रह गए। थोडी देर में पत्नी भी अपने यार के साथ गुप्तरुप से आई। घर में एक पलंग था। जिसके पाए बडे पतले.... नूकीले थे वह उठा कर रखा ... जल्दीबाजी में पत्नी ने अंधरे में शेठ (पति) को न देखा और पलंग रखा तो पलंग का एक पाया शेठ के पैर पर पड़ा। पलंग स्थिर न रहा हिलने–डुलने लगा तो पत्नि ने पास के पत्थर से पलंग का पैर जोर से ठोका। ठोकते ही पलंग का नूकीला लोहे का सलीया···शेठ के पैर में घूस गया। खून बहने लगा। पत्नी तो अपने प्रेमी यार के साथ पलंग पर चढ गई और दोनों देह क्रिडा में मस्त हो गए। स्वयं अपनी ही पत्नी की यह माया जाल देखकर पति शेठ तो हक्के–बक्के रह गए। ध्यान की धारा को बदल कर थोडा स्त्री–चरित्र पर भी चिन्तन करने लगे। अरे··· रे··· अफ–सोस मेरी ही पत्नी मेरे सामने ही ऐसा कुकर्म कर रही है··· क्या बात है ? शेठ चोंक गए।

रात्री में खून की धारा बहती रही। २ घंटे में शेठ के प्राण-पंखेरू उड गए, जमीन पर ढल पडे। प्रातः काल पत्नी ने देखा तो आश्चर्य लगा। अरे रे! यह क्या हुआ ? अब पाप को छिपाने के लिए क्या करें ? अक्सर पाप छिपाने के लिए पापी माया जाल का नाटक शुरू करता है। चलो किसी कदर किए हुए पाप से बच

सकेंगे इस आशा से माया–कपट का आश्रय लेता है। एक सादा प्रश्न पूछता हुं-आप पाप से बचना चाहते हैं ? या पाप के फल, या पाप की सजा से बचना चाहते हैं ? अफसोस कोई उत्तर नहीं ! लेकिन उत्तर में यह ध्वनि थी कि हम पाप की सजा से बचना चाहते हैं। सही बात है कि "पाप की सजा बडी भारी" होती है इसलिए उस सजा से छूटने के लिए पाप की सजा से बचना चाहते हैं यह तो स्वाभाविक है,परन्तु ···अफसोस कि पाप से कोई बचना नहीं चाहता है ? आश्चर्य है। अरे पाप से बचोंगे तो ही पाप की सजा से भी बच पाओगे। लेकिन ना····पाप करने तो बडे मीठे लगते हैं····अच्छे लगते हैं पाप करना छोडना तो बहुत ही कठिन है तो फिर समझीए पाप की सजा निश्चित ही भोगनी पडेगी। हंसते–हंसते किए हुए पाप रोते ··रोते भी भोगने ही पडेंगे। यह निर्विवाद सत्य है।

पत्नी पाप करके भी पाप की सजा से बचना चाहती थी ··· वह चिन्ता में थी कि अब क्या बहाना बनाउं ? इतने में शेठ का पाला हुआ बैल नित्य क्रम के अनुसार प्रातः काल शेठ के द्वारा किए जाते स्त्रोतपाठ सुनने के लिए आया ! आते ही खून देखकर,शेठ को गिरे हुए देखकर शोकग्रस्त होकर वहीं बैठ गया। पत्नी ने यह अच्छा मौका देखकर जमीन पर से खून लेकर बैल के शिंग पर पोत दिया। और अपने आप बन ठन कर बाहर रस्ते पर जाकर चिल्लाती हुई, जोर से चीखती हुई रोने लगी! ···· हाय ··हाय बैल ने शेठ को मार दिया ··अरे ! अब मैं क्या करूं? ····अरे रे···मैं तो विधवा हो गई ! ··चिल्लाने लगी ! लोग इकट्ठे

हो गए। यह दृश्य सभी देखने लगे। अन्त में मामला राज दरबार में कोर्ट में गया। राजा ने मंत्री ने न्याय दिया कि इसका रहस्य-भेद खोला ही जाय ! एक लोहे का गोला भट्टी में तपाकर गरम किया जाय ! बैल और स्त्री दोनों में से जो जीभ से चाट ले वह निरपराधी। और जो न चाटे वह अपराधी। बैल ने सिर हिला-कर स्वीकृति दी। भरे राज दरबार में प्रयोग किया गया। बैल ने तो दौडते हुए आकर गरम-गरम तपे हुए लोहे के गोले को गेंद को तरह चाटने लगा। सत्यवादी को क्या होता है ? दुसरी पारी जब शेठ की पत्नी शेठानी की आई तो वह कांपने लगी। दिल धडकने लगा। बहाने बनानें लगी।... लेकिन अब क्या हो सकता था।.... पाप से डरी नहीं चाट पाई और सत्य हकीकत-प्रगट हुई।.... सजा के पात्र ठहरी।....पाप की सजा तो वैसे भी बडी भारी होती है।

माया–कपट कौन कर सकता है ?—

क्या जगत में सभी जीव माया कर सकते हैं ? नहीं। हां क्रोध करना, लोभ करना सभी के लिए आसान है। सरल है। छोटा बच्चा भी क्रोध कर सकता है। लोभ कर सकता है। क्योंकि क्रोध करने में कोई बुद्धि–होशियारी, चतुराई नहीं चाहिए। थोडा सा मुंह बिगाडा कि क्रोध शुरू हो गया। क्रोध में करना भी क्या है ? २ शब्द तेजी से जोर से, बोलना है। अपशब्द–भद्दे शब्द बोल दिया कि हो गया क्रोध। क्रोधी वैसे भी कहां सोच-समझकर–विचारकर बोलता है ? वह तो अविचारी ही अधिक बोलता है। क्योंकि आवेश होता है। क्रोधी की अवस्था अन्ध व्यक्ति जैसी होती

है। क्रोधी के लिए कोई भी शब्द वर्ज्य नहीं है। "मुखमस्ति इति वक्तव्यम्" जो भी मुंह में आया वह बलो। कहने का तात्पर्य यह है कि क्रोध, लोभ करने में कोई चातुर्य नहीं है। बुद्धि कि होंशियारी की आवश्यकता नहीं है। छोटा बच्चा और बूढा सभी कर सकता है। जबिक मान-माया सभी के लिए आसान नहीं है। मान तो कौन कर सकता है? जिसके पास वस्तु ज्यादा है, धन संपत्ति, ऐश्वर्य–वैभव, बुद्धि, ज्ञान, रूप, बल, आदि जिसके पास अधिक हो जाती, कुल ऊंचे हो, वही मान कर सकता है। रस्ते का भिखारी बिचारा क्या मान करे? उसके पास है ही क्या जो मान-अभिमान करे? न पद है न प्रतिष्ठा! इसलिए मान करने वाले संसार में कितने प्रतिशत है? जिनके पास सब कुछ है ऐसे संपन्न लोग ही गिनें तो वर्तमान विश्व की आज की समस्त वसति जो कि साडे चार से पांच अरब के आसपास है। इसमें मुश्किल से २०'/., २४'/. या ३०'/. प्रतिशत लोग ही सुखी, सपन्न होंगे। जिनको ऐश्वर्य, वैभवादि मिला हो, बल, रूप, श्रुत ज्ञान आदि मिला हो ऐसे ३०'/. से ज्यादा मिलने मुश्किल है। इतने ही मान-अभिमान कर सकते हैं। और शेष ६०'/. लोग जिनको एक समय पूरा पेट भर खाने को भी नहीं मिला है, अनपढ है वे बिचारे क्या मान-अभिमान करेंगे? किस पर मान करे? हां वैसे तो प्रत्येक व्यक्ति मान-अभिमान कर सकता है। अपने से छोटे के सामने तो भिखारी भी बडा है। थोडे में भी थोडे के सामने जो भी मिला है वह उससे तो ज्यादा है वह उतने पर भी अभिमान कर सकता है। रूप-बल,

ज्ञान, जो भी भले ही अल्प प्रमाण में मिला हो लेकिन दूसरे से कुछ तो ज्यादा है उसी पर वह अभिमान कर सकता है। मेरी आयु दुसरे से थोडी बडी है अतः मैं दूसरे के प्रति मान-अभिमान सकता हुं। इस तरह चारों कषायों में जगत के जीवों की प्रतिशत संख्या देखें तो संसार में शत प्रतिशत क्रोध करने वाले मिलेंगे। शत प्रतिशत लोभ करने वाले मिल जाएंगे। लेकिन मान की संख्या ५० से ६०%. प्रतिशत और माया की तो और ही कम मिलेगी। क्योंकि माया-कपट करना क्रोध के जितना आसान काम नहीं है! सभी नहीं कर सकते। माया-कपट करने में बुद्धि चातुर्य, बुद्धि की कुशलता, होंशियारी वाक्पटुता आदि कई चीजें चाहिए! बिना बुद्धिवाला माया-कपट नहीं कर सकता! माया इतनी आसान नहीं है। और जिसको माया-कपट करनी न आवे वह फस जाता है। पकडा जाता है!

पुरुषों की अपेक्षा स्त्रीयों में माया अधिक होती है—

कहने का तात्पर्य यह नहीं है कि पुरुष मायावी नहीं होता है। पुरुष को माया-कपट करना नही आता है! नही ऐसी भी बात नहीं है। कई पुरुष माया-कपट करने में काफी कुशल है। लेकिन ... फिर भी मोटे तौर पर देखा जाय तो एक ऐसा वर्गीकरण किया है कि पुरुषों में क्रोध-मान की मात्रा ज्यादा रहती है तो स्त्रीयों मैं माया- और लोभ की मात्रा अक्सर ज्यादा रहती है : ऐसा देखा जाता है! यद्यपि कर्मग्रंथ के शास्त्रकार महर्षि तो यह कहते हैं कि जगत के सभी जीव मात्र में चारों ही कषाय है। चाहे वह जीव

तिर्यंच की पशु–पक्षी की गति का हो, या चाहें वह देव-मनुष्य की गति का हो। चारों गति के पांचो जाति के छोटे–बडे सभी जीवों में चारों कषाय भरे पडे है। क्योंकि संसारस्थ सभी जीव कर्म के उदयवाले है। छद्मस्थ है। अतः मोहनीय कर्मग्रस्त भी है। मोहनीय कर्म के भेदों में कषाय–मोहनीय है। इसी में क्रोध, मान,माया लोभ आदि कषाय मोहनीय आदि कर्मों का उदय आज सभी को है। फिर भी बहुलता देखी जाय तो चारों कषायों में से एक कषाय की मात्रा अधिक देखी जाती है, और दूसरे तीन कषायों की मात्रा थोडी कम होती है। जैसे किसी में क्रोध की मात्रा अत्यधिक है तो दूसरे तीन की मात्रा कम रहेगी!

इसी के आधार पर ही हम किसी को क्रोधी,किसी को मानी-अभिमानी और किसी को मायावी, किसी को लोभी आदि भिन्न–भिन्न स्वभाववाले कहते हैं। क्रोधी को क्रोध करना विशेष आता है। मान-माया कम। जैसे एक विषय का सर्जन डॉक्टर है,उदाहरणार्थ आंख के विशेषज्ञ सर्जन को नाक–कान का ज्ञान नहीं है। यद्यपि सभी डॉक्टर मूल में *M. B. B. S.* तो है ही। अतः सामान्य जानकारी तो सारे शरीर की रहती है फिर भी निष्णात एक विषय में ही है। वैसे ही सभी को सभी कषाय आते हैं फिर भी किसी में क्रोध की मात्रा अत्यधिक रहती है और शेष कम। किसीमें मान ज्यादा तो शेष तीनों कम। उसी तरह मायावी में माया का प्रमाण ज्यादा रहता है तो शेष तीन की मात्रा कम। इसी कारण वह मायावी कहा जाता है। इसी आधार पर अक्सर

स्त्रीयों में माया–कपट की वृत्ति ज्यादा रहती हैं। जन्मजात है। या ऐसे कहीए कि जन्मजात माया–कपट स्त्रीयों में ज्यादा ही रहता है। उसी तरह लोभ भी। कितना भी मिले तो भी संतोष कहां है? आभुषण-गहने आप कितने भी दो लेकिन संतोष ही कहां है।

माया कपट करने में वैसे भी स्त्रीयां चतुर होती है। कई बार तो अपने पति को भी कह देती है। आप चुप बैठिए। पडोसी से निपटना आपको नहीं आएगा। यह तो मेरा काम है। मैं इसमें चतुर हुं, पडोसी को मैं ही पहुंच सकुंगी और वह आगे होती है। और आपको बैठा देती है। यही तरीका सगे-संबंधो रिस्तेदारों के साथ रहता है। वहां भी पत्नी पति को शांत बैठाकर स्वयं कार्य संभालती है। क्योंकि पुरुष बिचारा माया-प्रपंच करना नहीं जानता है.. अतः वह फस जाएगा। पकडा जाएगा। और बाजी बिगड जाएगी। ऐसे समय पर पत्नी बाजो संभालती है। वह माया-प्रपंच में चतुर है। अतः पडोसी को दाव-पेच में लेने की कुशलता उसमें है। अच्छे से अच्छा सुप्रिम कोर्ट का कानुन शास्त्र का ज्ञाता जज भी अपनी श्रीमति के सामने ठंडा बर्फ बनकर चलता है। वहां उसका जजपना कुछ भी काम नहीं आता।

स्त्री चरित्र और माया जाल—

मायावी वृत्ति के कारण ही स्त्री चरित्र का स्वरुप बडा विकृत है। यहां तक कहा जाता है कि ब्रह्मा भी स्त्री चरित्र को नहीं पहचान सकते। हिमालय से निकला छोटा झरना किस रास्ते से होता

हुआ नदि बनकर समुद्र में जाएगा ये बताना जितना मुश्किल है, उससे ज्यादा स्त्री की चाल बतानी मुश्किल है। कवियों ने यहां तक कहा है कि - पानी में चलने वाली मछली की निशानी नही मिल सकती, और आकाश में उडने वाले पक्षी की निशानी नहीं मिल सकती उसी तरह स्त्री के चरित्र की निशानी, स्त्री के चाल-चलन की निशानी मिलनी बडी मुश्किल है। इसलिए कहा कि सृष्टि का रचयिता ब्रह्मा भी स्त्री की चाल को नहीं पहचान सकता। अर्थात् स्त्री जब माया-प्रपंच की जाल रचती है तब तो अच्छा अच्छा भी मछली की तरह जाल में फस जाता है।

राजा प्रदेशी की रानी सूर्यकान्ता पहले तो पति के साथ अत्यन्त प्रेमासक्त थी लेकिन नास्तिक प्रदेशी राजा जब केशीस्वामी से धर्म समझकर आस्तिक बना,व्रत नियमधारी धर्मी बना तो रानी को अच्छा नहीं लगा। अरे... रे अब तो में देह सुख भोगने से भी वंचित रह जाउंगी। हाय अब मेरी इच्छा कौन संतोषेगा ? इस विचार में रानीने दुसरा रास्ता निकाला और अन्य से संबंध करने का सोचकर राजा को किस तरह बीच में से हटाना ? यह सोचने लगी स्त्री कहलाती है अबला। लेकिन जब वह सबला बनती है तो तो फिर दुनिया में हुए राजा को आलिंगन देने के बहाने अपने बाल छुटे बिखरा कर राजा के मुंह पर पडी.... और उपर साडी का भाग भी इस तरह ढंक दिया ताकी देखने वाले को पता भी न चले। और थी ही पत्नी.....वह यदि पति को आलिंगन दे तो भी दूसरे देखने वाले क्या कर सकते है ? इतने में आलिंगन देने के बहाने

....पत्नी-रानी सूर्यकान्ता ने अपनी अंगुलियों के नाखून से राजा का गला घोंटकर....मुख्य नस दबा दी....तोड दी... खून बहने लगा और राजा ने दम तोड दिया....प्राण पंखेरु उड गए।अब क्या....? जब चिडिया चुन गयी खेत।

मायावी क्या नहीं कर सकता ? मायावी के लिए कुछ भी असाध्य-अशक्य नहीं है। एक स्त्री जो कि कोमल हृदय की दयापात्र अबला गिनी जाती है वह भी पति को यमलोक में पहुंचा सकती है। और यदि वह रणचंडी बने तो क्या करेगी इसकी कल्पना भी हम नहीं कर सकते।

दुसरे को ठगनेवाला अपने आप को भी ठगता है—

आप यह मत समझीए कि मैं दुनिया को ठग सकता हुं लेकिन मुझे कोई नहीं ठग सकता। नहीं ऐसा अभिमान रखना भी बडी भारी भूल है। संसार में शेर के सिर पर सव्वा शेर मिलते है। अरे ! मानलो कोई न भी मिले तो भी दुसरे को ठगने वाला वञ्चक पहले तो वह स्वयं अपने आप को भी ठग रहा है यह क्यों भूल जाता है। संसार में सभी जीव अपने अपने कर्म के आधीन है। अपने अपने पुण्य-पाप के उदय के अनुसार जीव संसार में सुखी-दुःखी होता है। आप सूर्य के सामने देखने जाएंगे आपकी ही आंखे बंद हो जाएगी। आप सूर्य के सामने धूल फेंकेंगे संभव है वह धूल आपकी ही आंख में गिरे। दूसरों की आंख में मिर्चि डालने वाले की आंख में भी मिर्चि की जलन शुरु होती है। कीचड के खड्डे में पत्थर फेंककर दूसरों की तरफ कीचड उडाने वाले पर भी कोचड

के छींटे जरुर उडते है। वह यह कभी भी न भूले कि मूझे कुछ भीं नहीं होगा। नहीं दिवाल पर फेंकी गई गेंद जरुर फेंकने वाले के सामने वापिस लौटती है यह याद रखें। योगशास्त्र में भी कहा है कि—**"भुवनं वञ्चयमाना-वञ्चयंते स्वयमेव हि।"**-दुनिया को ठगने वाले अपने आप को भी ठगते है। **"बकवृत्ति समालम्ब्य-वंचकैर्वंचित जगत्"** बगुले की सी वृत्ति रखकर मायावी सारे जगत को ठगने जाते हैं उसमें मैने मेरी आत्मा को भी ठगी है।आत्म-वंचना यह भो .. महादोष है। दुसरों को ठगने से मुझे क्या नुकशान होगा ? मेरा क्या होगा ? मेरी क्या गति होगी ? ऐसा पाप करने के बाद मेरी क्या दशा होगो ? इत्यादि विचार यदि हमको आए तो... तो हम वह पाप करना ही छोड दे। लेकिन स्वयं अपने प्रति तो विचार आने ही मुश्किल है। मायावि को कैसे कर्म बंधते हैं ? यह देखें—

मायावी को कैसे कर्म बंधते है ?—

एक बात तो निश्चित हो गई कि माया पाप है। बूरी चीज है ! यह पुण्य तो नहीं ही है। अतः माया करने से कोई भी अच्छा पुण्य कर्म बांधे यह तो कदापि संभव ही नहीं है। अतः जो भी बधेगे वे पापकर्म- अशुफकर्म ही बंधेंगे। आठ कर्म में शुभ अशुभ का भेद करें तो ऐसा पता चलता है कि—

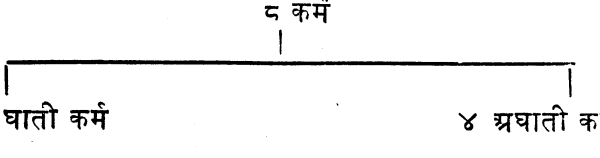

४ घाती कर्म ४ अघाती कर्म

सभी अशुभ(पाप)कर्म है। कुछ शुभ(पुण्य)कर्म कुछ अशुभ(पापकर्म है)

माया यह अशुभ पाप प्रवृत्ति है अतः अशुभ घाती कर्म भी सभी बधेंगे ही ! और फिर रहे अघाती कर्म । अघाती में भी शुभ पुण्य-कर्म तो मायावी नहीं बांधेगा । अतः अघाती में भी अशुभ पाप प्रकृतियां ही बांधेगा । उमास्वाति महाराज तत्वार्थसूत्र में कहते हैं- **"माया तैर्यग्योनस्य"**— चार गति में माया कपट करने से जीव तिर्यंच गति का कर्म बांधता है । और उसे पशु–पक्षी की तिर्यंच गति में जाकर जन्म लेना पडता है । **"माया दुर्गतिकारणम्"** माया दुर्गति की कारण है यह योगशास्त्रकार स्पष्ट ही कहते हैं । मायावी की सद्गति हो यह कभी संभव ही नहीं है । कर्मसत्ता के घर में न तो देर है, और न ही अंधेर है । यहां तो निश्चित गणितानुसारी निमय है अतः दुसरा विकल्प ही नहीं है । मान लो किसी जीव ने मनुष्य की सद्गति का कर्म उपार्जन किया है और बाद में उसने माया–कपट की तो वह मनुष्यगति में जाएगा लेकिन स्त्री का रूप धारण करेगा । स्त्रीजन्म में जन्मजात ही माया-कपट की वृत्ति भरी पडी है । मानों जन्म के साथ भेंट मिलि हो ! औरों की तो बात क्या करें ? वर्तमान अवसर्पिणि की चोवीशी के २४ तीर्थंकरों में १९ वे तीर्थंकर मल्लिनाथ भगवान का हो पूर्व जन्म देखिए !

मल्लिनाथ स्त्री तीर्थंकर—

यद्यपि राजमार्ग का नियम है कि स्त्री तीर्थंकर नहीं बन

सकती। क्योंकि तीर्थंकर नाम कर्म तो सर्वश्रेष्ठ पुण्यप्रकृति है, जबकि स्त्रीत्वपना तो अशुभ पापकर्म के उदय से प्राप्य है। अब दोनों तो कैसे मिलकर एक हों ? पुरूष प्रधान धर्म है। पुरूषपना यह श्रेष्ठ पुण्य कर्म के उदय से प्राप्त है। फिर भी कल्पसूत्र में बताए १० अच्छेरे–आश्चर्यकारी घटना में स्त्री तीर्थंकर का होना भी अच्छेरा माना गया है। अनन्त उत्सर्पिणी–अवसर्पिणीकाल बीतने के बाद कभी ऐसे अच्छेरे हो भी जाते हैं। इसमें एक अच्छेरा स्त्री तीर्थंकर का हुआ है।इसमें कर्मसत्ता कारण है ।

बात ऐसी है पूर्व जन्म में मल्लीनाथ भगवान एक सम्पन्न राजकुमार थे। और साथ में अन्य पांच मित्र थे। अतः ये कुल ६ मित्र मिलकर सब कुछ साथ ही करते है। धिरे–धिरे ये छहों मित्र तप-तपश्चर्या के मार्ग पर आगे बढे-इसमें सभी सहमत हुए-और निर्णय किया गया कि छहों मित्रों को एक साथ मिलकर ही तपश्चर्या करनी ! सभी एक साथ आयंबिल करना, और उपवास या एकाशना का तप हो तो भी सभी एक साथ मिलकर ही करना। उसमें भी एक मित्र जो मल्लिकुमारी का जीव था वह मुख्य बना अतःअन्य पांचों मित्रों ने निर्णय किया कि..... हमारा यह मुख्य मित्र जो तप करे, या यह जो तप करने का निर्णय करे वही हम सबको करना ऐसा निश्चय किया गया था। और बहुत अच्छी तरह से सभी साथ मिलकर तप

करते थे। लेकिन सबसे बडे मुख्य मित्र के मन में कुछ ऐसा विचार आया कि मैं सबसे आगे बढ जाउं! आगे बढना चाहें तो यह खराब नहीं है, गलत नहीं है–परन्तु ··· माया कपट करके दुसरों को पीछे रखकर आगे बढना यह तरीका गलत है! उसने ऐसा किया····हां हां ··· आज सभी एकाशना करेंगे?····इस निश्चयानुसार ··· सभी एकाशना करने बैठे ··· फिर बडे मुख्य मित्र ने बहाना निकालकर कि मेरा पेट दुःखता है ऐसा कहकर उपवास किया। इस तरह वे आगे बढे। फिर एक दिन एकाशना का निश्चय करके पांचो साथी मित्रों को तो एकाशना कराया और स्वयं आयंबिल किया। इस तरह अब तो आदत पड गई। और आदत के आधीन होकर बार-बार ऐसा करने लगे। हां तप कर रहे थे यह अच्छा ही था···· लेकिन बीच में माया का आचरण खराब था। भिन्न-भिन्न प्रकार के बहाने बनाकर ··· आगे बढना या न भी करना, या पीछे रह जाना··· यह मित्रों के साथ किए गए निश्चय का विश्वासघात था।

मित्र सभी उद्विग्न हो गए। आगम में ठीक ही कहा है कि– **"माया मित्ताणि नासेइ"** माया मित्रता का नाश करती है। मैत्री के संबंध को तोडती है यद्यपि मुख्य मित्र ने.....तप बहुत अच्छा किया....वीशस्थानक की आराधना भी की और "सवि जीव करुं शासन रसी" की भावना से सर्व श्रेष्ठ तीर्थंकर नाम कर्म भी बाँधा ....और तीसरे जन्म में कुम्भ राजा के यहां मल्लिकुमारी के रुप में जन्म लेकर तीर्थंकर भी बने और मोक्ष में भी पधारे। लेकिन एक बार तो माया ने कर्म का फल चखाया। स्त्रीरुप में जन्म तो

लेना पडा। इतिहास के पन्ने पर तो स्त्री ही कहलाए कहने का तात्पर्य कि थोड सी माया की कृपटवृत्ति में धर्म-तप करते हुए भी कर्म बांधने पर तीर्थंकर जैसों की यह दशा हुई तो हमारे जैसे सामान्य मानवी की क्या दशा होगी ?

माया-कपट से कितना नुकशान होता है ?—

किसी भी कषाय से कभी भी फायदा तो होने वाला ही नहीं है। नुकशान ही होता है। क्रोध से जितना नुकशान होता है उससे हजारगुना ज्यादा नुकशान मान से होता है, और मान से लाख गुना ज्यादा नुकशान माया से होता है। और लोभ तो है ही सर्व-नाश करने वाला। क्षणिक लाभ माया से स्वार्थ सिद्ध होता होगा लेकिन परिणाम बहुत ही खराब आता है। **"माया मित्ताणि नासेइ"** माया मित्रता का नाश करती हैं। क्योंकि मित्रता में विश्वास होता है और मायावी विश्वासघात करके मंत्री को धक्का पहूचाता है। मायावी कभी भी विश्वास सपादन नहीं कर सकता। कौन उस पर विश्वाश रखे ? सब का विश्वास तूट जाता है। और भी कहा है कि —

दम्भो मुक्ति लतावन्हि-र्दम्भो राहुः क्रियाविधौ ।
दौर्भाग्यकारणं दम्भो, दम्भोऽध्यात्मसुखार्गला ।।

दम्भ मोक्षरूपी लता को जलाने में वन्हि का (अग्नि) काम करता है। और माया का सेवन करने वाला मोक्ष से हजारों योजन दूर जाता है। सुन्दर क्रिया सुन्दर विधी करने में दम्भ राहु की तरह बीच में बाधक है। दम्भ दौर्भाग्य का सबसे बडा कारण है। दम्भ

का सेवन करने वाले के भाग्य में दुःखी होने को ही लिखा है। और आध्यात्मिक सुख का अनुभव करने में दम्भ बीच में अर्गला की तरह बाधक है।

आत्मोत्कर्षात्ततो दम्भी, परेषां चापवादतः ।
बध्नाति कठिनं कर्म, बाधकं योगजन्मनः ।।

आत्मा का उत्कर्ष किया हो और फिर भी दम्भ का सेवन करता हो तो भी वह कठिन कर्म बांधता है। योगी बनने में दम्भ बीच में बाधक है। बगुला भगत दम्भी कहलाएगा, ठग कहलाएगा परन्तु योगी नहीं कहलाएगा। यही दशा दम्भी की है। साधक-या तपस्वी चाहे कितनी भी साधना या तपश्चर्या करते हो लेकिन स्वभाव मायावि हो, तपश्चर्या में भी माया कपट करता हो, तो जरुर समझीए ऐसे तपस्वी पर से उनका विश्वास हठ जाएगा। लोग विश्वास नहीं रखेंगे। संसार में पैसा मिलना आसान है लेकिन विश्वास सम्पादन करना बडा ही कठिन है। और माया-प्रपंच की वृत्ति वाला कभी भी विश्वास संपादन नहीं कर सकता। आध्यात्मिक साधना के साधक को थोडी भी माया नौका में छोटे छिद्र की तरह डुबा देती हैं। प्रशमरति में कहते है —

मायाशीलः पुरुषो यद्यपि न करोति किञ्चिदपराधम् ।
सर्प इवाविश्वास्यो भवति तथाप्यात्मदोषहतः ।।

जैसे कोई सांप का कभी भी विश्वास नहीं करता। क्योंकि वह विषैला है या नहीं ? वह काटेगा या नहीं ? इस बैठे हुए या

सोते हुए सांप के भी पास से गुजरना. या जगाना इतना विश्वास रखके तो कोई नहीं चलेंगा। क्योंकि संभव है विषैला हो और काट ले तो ? उसी तरह मायावी पुरुष यद्यापि निरपराधी है, निर्दोष होकर बैठा है फिर भी वह माया की वृत्ति के कारण अविश्वसनीय है। क्योंकि किसी पर विश्वास रख कर कोइ काम करें लेकिन वह कब ठगेगा? कब अपनी जाल में फसाएगा ? यह पता नहीं चलता और हमारी धारणा बिगड जाती है। मायावी मच्छीमार के जैसा है। मच्छीमार जिस तरह जाल को बिछाकर मछली पकडता है उसी तरह मायावी भी अपनी जाल बिछाकर ही रखता है। जो भी कोई आया उसे फसाया। मायावी हमेशा दुसरे को फसाने का ही काम करता है।

माया सत्यवृत्ति की नाशक है। मायावी सत्य नहीं बोलता हैं। असत्य ही बोलता है। लेकिन असत्य को ऐसा रंग चढाकर बोलेगा कि जैसे मानों कडवी गोली भी मीठी लगे। बडी अच्छी लगे। और हम खा सके। वैसे ही मायावी असत्य के उपर सत्य का रंग लगाकर ऐसी बात घूमाकर बोलेगा जिससे सुनतेही किसीको सत्य ही लग जाय, और विश्वास पैदा हो जाए। और सामने वाला फस जाए। मायावी की भाषा बहुत ही मीठि होती है। वह इतना मीठा मधुर बोलता है कि.... किसी को असत्य है यह शंका करने का अवकाश भी नहीं मिलता। अतः जिस तरह एक पैर पर खडे बगुले के मन में प्रति क्षण मछली का ही ध्यान है, उसी तरह प्रति-क्षण किसी को अपनी जाल में फसाने का विचार मायावी सतत करता रहता है।

माया के पाप का फल अगले जन्म में कैसा मिला?—

महासती अन्जना सुंदरी का नाम आपने सुना है। इतिहास की प्रसिद्ध सतीयों में पवनप्रिया सती अंजना का अमर नाम है। अत्यन्त रुप-सौंदर्य से संपन्न राजपुत्री अंजना की शादी पवनंजय राजकुमार के साथ हुई। लेकिन पूर्वजन्म के पापकर्म के उदय में आने के कारण पति-पत्नि में १२वर्ष का वियोग रहा। पति पवनंजय अंजना का मुंह भी न देखते हुए दूर ही रहता था। आखिर क्या कारण था? सती जैसी पवित्र सन्नारी की १२ वर्ष तक जहर के घूंट पीने जैसी वियोगी अवस्था में विरह वेदना के दुःख क्यों सहन करने पडे। अन्त में एक अवधिज्ञानी महात्मा मिले और अंजना सुंदरी ने अपने दुःख का कारण पूछा। महाज्ञानी गीतार्थ महात्मा ने अंजना का पूर्वजन्म देखते हुए उसे बताया कि—

पूर्व जन्म में तुं एक शेठ की पत्नी थी। और एक तेरी शोक्य (सपत्नी) थी। एक पति की छोटी बडी दो पत्नी होती है उस तरह। तुं बडी थी। अधर्मी थी। धर्म बिल्कुल प्रिय नहीं था। जबकि छोटी बहुत ही धर्मी थी। समझदार थी। नित्य पूजा-पाठ करके मुंह में पानी डालती थी। लेकिन तुझे छोटी पर बहुत ही ईर्ष्या थी। तेरे में माया-कपट की वृत्ति बहुत ज्यादा थी। छोटी बिचारी सीधी सादी सरल थी। तु दिन भर उससे काम करवाती थी। कपडे धोना, बरतन मांजना, झाडु निकालना आदि सभी काम उसके पास करवाती थी। वह बिचारी सब कुछ मौन मुंह

से करती थी। लेकिन पूंजा-पाठ का उसका नियम वह नहीं तोडती थी। किसी कदर काम में से समय बचाकर भी पुजा पाठ कर लेती थी। दोपहर तक काम करने के बाद भी पुजा-पाठ करके फिर मुंह में पानी डालती थी। अन्त में उसने प्रतिमाजी घर पर लाए। गृहमंदिर सा बनाया और समय पर पुजा करने लगी। लेकिन यह तुझे खटकता था। एक बार तूने भगवान की प्रतिमाजी भी धूल में फेंक दी। और उपर कचरा डाल दिया। छोटी बिचारी कल्पान्त करने लगी। ..... अरे रे.....प्रभुजी कैसे खो गए। रोती चिल्लाती पानी भी न पीति हुई प्रतिमाजी ढूंढने लगी। कहीं पर पर भी न मिली।....इस तरह अन्न पानी का त्याग करके कल्पान्त करती हुई छोटी को देखकर तूने ढूंढने का नाटक बनाया। और ढूढने लगी।..और झाडु लेकर कचरे के ढिग में से प्रतिमाजी बाहर निकाली और माया कपट से बोली ...अरे यह किसने किया? ऐसा कौन करता है ? क्या मालुम किसने किया।... चलो फिर भी मैंने तो भला ही किया है कि प्रतिमाजी ढुंढ निकाली....तो.... लो....कहते हुए छोटी को दी। मानो मुरदे में फिर चेतना आई इस तरह छोटी प्रभुजी को लेकर नाचने लगी। प्रसन्न हो गइ। अभिषेक किया। पूजा-पाठ की। फिर अन्नजल लिया। लेकिन हे अन्जना ! ऐसे माया कपट में उस १२ घडी के काल का भक्त और भगवान का जो तूने वियोग कराया वही कर्म आज तुझे इस जन्म में उदय में आया है जिसके फलस्वरुप पति के साथ १२ वर्ष तक वियोग रहा है और रो-रो कर विरह वेदना का दुःख सहन करना

पडा। सिर पर कलंक लगा। अरोप-आक्षेप हुए। घर से निकाल दी गई। आदि अनेक प्रकार से पाप कर्म की सजा भुगतनी पडी। पाप करते समय तो बडे मीठे लगते हैं लेकिन पाप की बडी भारी सजा जब भुगतनी पडती है तब....पता चलता है। माया कपट के छोटे से पाप की सजा कितनी भारी मिलि ? १२ घडी के १२ वर्ष ? कर्म सत्ता का गणित कितना विचित्र है ?

आखिर माया उत्पन्न क्यों होती है ?—

माया के उद्भव होने का कारण क्या है ? क्यों और कैसे उत्पन्न होती है ? माया का जन्म किससे होता है ? इस बात पर यदि गंभीरता से सोचें तो इसका उत्तर इतना ही मिलेगा कि– अपना स्वार्थ सिद्ध करने के हेतु से, स्वार्थ साधने के लिए और किये हुए पापों को छिपाने के लिए लोग माया कपट का आश्रय लेते हैं। मन में इच्छा उत्पन्न हुई। स्वार्थ पैदा हुआ। अब स्वार्थ को कैसे साधना ? इस चिन्ता में स्वार्थ सिद्ध करने के लिए माया कपट का आश्रय लेना जीव पसंद करता है। पूर्वकर्मों के सस्कार जो माया के घर में पड हैं, वे तुरंत जागृत होते हैं और जीव माया कपट करने लगता है। स्वार्थ साधने में फिर अनेक प्रकार के असत्यों का सेवन भी करता है। कहा ही है कि-"असुनृतस्य जननी" असत्य का माता ही माया है।

माया-कपट करने वाले के ज्ञानचक्षु पर पडल आ जाते है। एक आवरण सा उसके ज्ञान चक्षु पर छा जाता है जिस तरह

कमले के रोगी को सब वस्तु पीली ही दिखती है उसी तरह मायावी को चारों तरफ स्वार्थ ही स्वार्थ दिखाई देता है । उसे इसी में रस लगता है । कपटवृत्ति के मानसिक आवरण से बार-बार मायाजाल भ्रमजाल की रचना मकडी की तरह करता है ताकि कोई फस जाय । उसके मन की गति कुटील-वक्र बन जाती है । वक्रता के कारण उसकी चाल भी टेढी-मेडी बनती है । फिर तों चाल ही क्या दृष्टि और वृत्ति सब वक्र बन जाती है । वक्रता सरलता का नाश करती है ।

वक्रता का कालिक वर्गीकरण—

काल

१	२	३
प्रथम जिन का काल	**२२ जिन का काल**	**२४ जिन का काल**
ऋजु + और जड जीव	**प्राज्ञ और ऋजु जीव**	**वक्र और जड जीव**

कल्पसूत्र में जीवों का वर्गीकरण इस तरह तीन प्रकार का किया है । (१) एक तो प्रथम तीर्थंकर श्री ऋषभदेव के तीसरे आरे को काल का स्वरुप है जबकि सभी जीव सरल होते थे लेकिन प्राज्ञता इतनी नहीं थी जबकि अजितनाथ से पार्श्वनाथ के २२ जिन के साधुओं का काल बहुत अच्छा था । सभी जीव स्वभाव से ही स्वयं प्राज्ञ-प्रज्ञावान् और सरल-ऋजु स्वभाव होते थे । और अन्त में आज हम सभी जीव जो कि परमात्मा २४ वें तीर्थंकर श्री महावीर स्वामी के काल में गिने जाते है । वे सभी प्राज्ञता के अभाव में जड है, और ऋजुता के अभाव में वक्रता वाले है । अतः वक्र

और जड ऐसे हम सभी कभी सीधी बात को भी घूमा-फिरा कर टेढ-मेढी बनाकर प्रयुक्त करते हैं। आज हमारे में वक्रता भरी पडी है।

धर्म के लिए पात्रता—"सरलता"—

सोचिए सभी के लिए हम पात्रता पहले देखते हैं। पिता अपनी पुंजी और दुकान के लिए पुत्र में पात्रता देखता है फिर देता है। कन्या देने के पहले पात्रता देखी जाती है। सिंहण के दुध के लिए सुवर्ण पात्र की अपेक्षा रखते हैं। उसी तरह यदि धर्म के लिए पात्रता देखनी हो तो क्या देखना चाहिए? कैसी व्यक्ति के हाथ में जाने से धर्म टिकेगा? अतः शास्त्रकार महर्षि कहते हैं कि "सरल स्वभावी" ऋजुता के गुणवाले जीव ही धर्म प्राप्ति के लिए उत्तम पात्र माने जाते हैं। सरलता के स्वभाव वाले जीवों को यदि धर्म थोडा भी मिलेगा तो धर्म का भी अभ्युदन होगा, धर्म दीयेगा। और यदि धर्म करने वाले धर्मी सरलतात्मा को भी लाभ होगा। और यदि मायावी-ठगवृत्ति वाले वक्र जीव के हाथों में धर्म चला गया तो छिद्र वाली नौंका की तरह धर्म और धर्मी दोनों हो डूबते जाएगे। मायावी न केवल अपनी ही अप्रतिष्ठा करता है अपितु धर्म की भी अप्रतिष्ठा करता है। धर्म को भी नीचे गिराता है। अतः जिस तरह उषर भूमि में डाले हुए बीज निष्फल जाते हैं उसी तरह मायावी में रहा हुआ धर्म निष्धल जाता है। तप-त्याग-वैराग्य चारित्र सब निष्फल जाता है। रत्नाकर सूरि महाराज ने कहा— **"ठगवा त्रिभु आ विश्व ने वैराग्य ना रंगो धर्या"**। हे भगवन्!

इस विश्व को ठगने के लिए भी मैंने वैराग्य का रंग धारण किया अर्थात् साधु बनकर भी मैंने ठग विद्या की ...लोगों को ठगा। अरे ....रे ! साधुपने में भी मेरी वंचकता नहीं गइ। इस तरह पश्चाताप के उद्‌गार में उन्होंने दुःख व्यक्त किया है। साधुपने का वेश धारण करने मात्र से मायावी स्वभाव की या जिस किसी भी स्वभाव की वृत्ति कहां चली जाती है ? अतः बोज बोने के लिए जिस तरह उपजाउ भूमि चाहिए उसी तरह धर्म के अभ्युदय के लिए पात्र सरल चाहिए, सरलता के गुण से परिपूर्ण आत्मा ही धर्म को पचा पाएगा। धर्म की अच्छी तरह उपासना कर पाएगा।

माया के आवरण से आच्छन्न आत्म अपनी आत्म शक्तियों को, आत्मगुणों को प्रगट नहीं कर सकती। अतः परिणाम स्वरुप वह पदार्थ के यथार्थ सत्य स्वरुप को नहीं जान सकता। अतः मायावी सत्यज्ञान से वंचित रहकर अज्ञानदशा में और मिथ्यात्व में ही लिपटा रहता है। ठीक ही कहा है कि— **"साचा मा समकित वसेजो रे,.... माया मा मिथ्यात्व रे.... जीवडा! म करीश माया लगार"**.... सत्य में ही सम्यक्त्व है। और माया में तो मिथ्यात्व रहता है। अतः हे जीव! तु माया मत करना। असत्य की माता माया के घर में सम्यक्त्व कैसे रहेगा ? यह संभव ही नहीं है। सूर्य के घर में अंधकार कैसे रहेगा। संभव ही नहीं है। उसी तरह मायाव के घर में सत्य सम्यक्त्व रह ही नहीं सकता। अतः मायावी मिथ्यात्वी को आमंत्रण देता है। **"मायाविणो हुंति परस्स पेसा"** सच ही कहा है कि— मायावी मनुष्य दुसरों के नोकर

बनते हैं। मायावी को मायाजाल का पापकर्म उसे आगामी जन्म में जिसके प्रति माया कपट को है उसका नोकर बनकर भी दिन बिताने पडते हैं। **"छाद्यमानमपि प्रायः कुकर्म स्फुटति स्वयम्"** माया कपट से ठगने पर भी प्रायः कुकर्म स्वयं प्रगट होते हैं। अपने आप पानी जैसे जमीन में से फूटकर बाहर आता है उसी तरह पापी का पाप, मायावी की माया एक दिन तो जरुर फूटकर बाहर आती है। अर्थात् पाप दबाए दबते नहीं है। एकदिन जरुर फूटकर बाहर आते है। पाप का घडा भर जाने के बाद एक दिन घडा भी फूटता है। पाप प्रगट होते हैं। यद्यपि माया करते समय दुसरों को न भी पता चले लेकिन माया का नाटक समाप्त होने के बाद ता माया का भंडा फूटता है। अन्त में पता चलता है कि इसने मुझे माया कपट में ठगा है। धोखा देने वाला प्रायः लोगों की नजर में आ ही जाता है। दिल्ली के दुनिया में प्रसिद्ध है। नाटक देखने वाला प्रेक्षक यह अच्छी तरह जानता है कि सामने स्टेज पर नाचने वाला या नाटक करने वाला ... स्वयं राम नहीं है, स्वयं रावण भी नहीं है। यह तो राम के, रावण के वेश में हैं। केवल रूप बदला है। वेश पहना है। वास्तविकता तो कुछ और ही है।

४ प्रकार की माया का स्वरुप

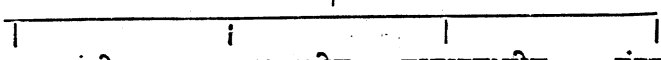

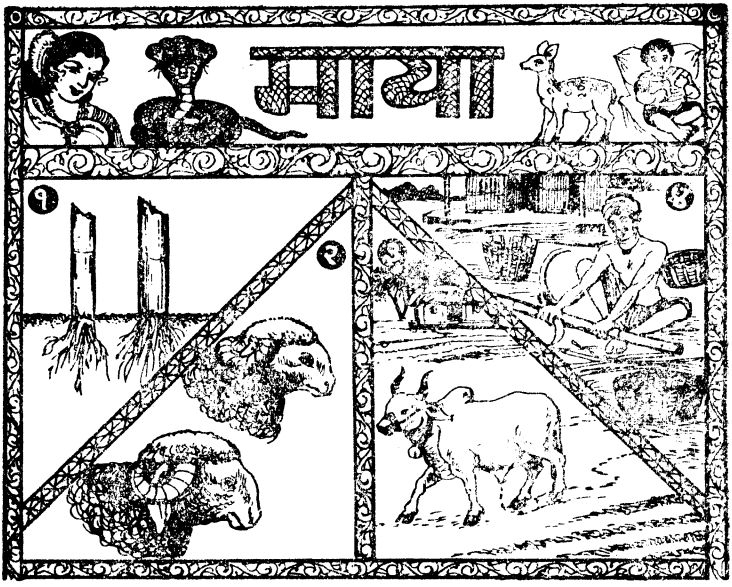

(१) **अनन्तानुबंधी माया—**

इस चित्र में बताए अनुसार कुछ साम्यता वाले प्रतीकों के आधार पर चार प्रकार की माया के भेदों को समझने में आसानी रहेगी। प्रथम चित्र में बांस के वृक्ष दिखाए गए है। बाँस के वृक्ष उपर से तो बिल्कुल सीधे हैं लेकिन उनके मूल में जडें तो कैसी टेडी-मेढी है ? किसी की जडें कभी भी सीधी नही होती है। और वृक्ष के आयुष्य काल तक ये टेढी जडें टेढी ही रहती है। सीधी होना संभव ही नहीं हैं। उसी तरह आयुष्य भर-आजन्म पर्यन्त वक्रता का, माया का स्वभाव रहे उसमें कभी भी सरलता आए ही नहीं

यह अनन्तानुबंधी माया का प्रथम प्रकार है। यह आजन्म रहने वाली है। कभी भी नहीं बदलती।

(२) **अप्रत्याख्यानी माया**—

भेड के सिर पर जो शिंग रहते है वे कितने टेढे मेढे है? लेकिन जिन्दगी भर टेढे ही रहते हैं ऐसी बात नहीं है। यदि उनको किसी आधार के साथ बांध कर रखा जाय तो १ सालभर में भी सीधे होने की संभावना है। इस तरह १ साल तक वक्रता-कूट कपटता का स्वभाव रहे और फिर संभव है थोडी सरलता आ भी जाय तो उसे दूसरे प्रकार की **अप्रत्याख्यानी माया कहते है।**

(३) **प्रत्याख्यानी माया**—

तीसरे चित्र में आप देखेंगे एक बैल पिशाब करता हुआ चल रहा है। उसकी चाल के आधार पर पिशाब की धारा भी टेढी मेढी सर्पकार गति की बनी है। लेकिन अधिक से अधिक चार महिने की अवधि के काल तक तो यह वक्रता टेढापन निकल भी सकता है। उसी तरह तीसरे प्रकार की प्रत्याख्यानी माया चार महिने के काल की है। ऐसे मायावी की वक्रता चार महिने के काल तक रहती है। और फिर सरलता आने की संभावना रहती है। यह पहले दो भेदों से कम वक्र है।

(४) **सेज्वलन माया**—

चौथा प्रकार संज्वलन माया की तुलना बांस को देत के साथ किया जा सकता है। के उपर से छाल जो उतारी जाती है वह टेढी रहती है। लेकिन वह टेढापन कहां तक रहता है?

जैसे ही आप पकड कर खिंचे कि सीधी बन जाएगी वैसे ही संज्वलन माया की वक्रता बहुत कम दिन तक रहती है। अधिक से अधिक १५ दिन तक। वैसे ही संज्वलन माया के उदयवाला जीव बहुत जल्दी वक्रता छोडकर सरलता स्वीकार लेता है। इस तरह चार प्रकार की माया कर्मशास्त्र में बताई गई है।

सिद्धाचल—

जैन धर्म के सबसे बडे महान तीर्थ का नाम क्या है? "सिद्धाचल"। अब आप इस नाम की शब्द रचना को ओर ध्यान से देखिए यह दो शब्दों का बना हुआ है। सिद्धा+चल। चल धातु चलने-गति करने के अर्थ में प्रयुक्त है। अब कैसे चलें? किस तरह चलना? इसके लिए आगे का शब्द कहता है "सिद्धा" चल,=सीधे चलो। टेढे-मेढे मत चलो, टेढी-मेढी वक्र गति से, कुटिल गति से मत चलो। बिल्ली की गति से मत चलो। कहते है ब्रिटिश की गोरी प्रजा में कुट-कपटता भरी पडी है। ये जहां भी गए। जहां भी राज्य किया वहां कूट-कपटता से राज्य किया। मायावी की चाल कभी सीधी नहीं होती है। इसलिए हमेशा सीधा चलने के लिए हमारी आंखो के सामने "सिद्धाचल" एक महान आलंबन है, प्रतीक है। लक्ष्य है। जो यह भी प्रेरणा देता है कि– सिद्धा+चल अर्थात् जैसे सिद्ध बनने बाले, सिद्ध बने हुए भगवान जिस चाल से चलकर आए है। जिस चाल अर्थात् गति से वे सिद्धि के धाम, सिद्धशिला पर मुक्तिधाम में पहुंचे है। उसी गति से उसी चाल से हम भी चलेंगे तो ही मोक्ष में मुक्तिधाम में पहुंच सकेंगे। अतः सिद्धों की

गति कैसी गति थी इस विषय में उमास्वाति महाराज तत्वार्थाधिगम सूत्र में कहते हैं– **"तदनन्तरमूर्ध्वं गच्छत्यालोकान्ताद्"** सर्व कर्मों के क्षय होने के बाद आत्मा उपर लोक के अन्त भाग तक जाती है। **पूर्वप्रयोगाद् असङ्गत्वाद् बन्धविच्छेदात् तथागति परिणामाच्च तद्गतिः।।** पूर्वप्रयोग असंग, बन्ध के विच्छेद और तथागति परिणाम इन चार हेतुओं से आत्मा सर्व कर्म क्षय हो जाने से उर्ध्वगति करती है। इस उर्ध्वगति का नाम है ऋजु-सरल-सीधी गति। बिल्कुल ९०° के कोण की तरह सीधी सरल गति से, उर्ध्वगति से लोक के अन्त भाग तक जाती है, और वहां जाकर सिद्धात्मा स्थिर हो जाती है। और वहां अनन्त काल तक स्थिर रहती है।

हमारा भी चरम साध्य तो मोक्ष-प्राप्ति का ही है। हम भी एक दिन अवश्य सिद्धशिला पर जाना ही चाहते हैं। और उसी लक्ष्य से आज हम हमारी धर्माराधना कर रहे हैं। अब सोचिए मुक्तिधाम-सिद्धशिला पर जाने की गति तो बिल्कुल सीधी-सरल (ऋजु) गति है। १ समय में सात राज लोक का अन्तर (दूरी) काटकर आत्मा वहां पहुंच कर स्थिर हो जाती है। जो सीधा चलता है वही जल्दी चलता है, वही जल्दी पहुंचता है। जल्दी जाता है। और जो टेढा-मेढा-तिर्छा चलता है वह कभी भी जल्दी नहीं चल सकता और, जल्दी पहुंच नहीं सकता। सीधी-सरल(ऋजु) गति से चलने पर ही मोक्ष आएगा। टेढा-मेढा चलने पर तो अन्य गतियां आएगो। फिर अन्यगति में ही जन्म होगा। मुक्ति धाम में

नहीं पहुंच पाएंगे। जब मुक्ति धाम में जाना है ऐसा हमारा लक्ष है तो फिर आज से हमें सीधे चलने की प्रेक्टीस करनी चाहिए। और हम तो टेढे-मेढे-मायावी कुटील-चाल (गति) से चल रहे हैं। सोचिए सिद्धिगति में कैसे पहुंचेंगे ? वहां जाने के लिए तो सिधी-सरल-(ऋजु) गति ही काम आएगी। उसमें तो कोई विकल्प ही नहीं है। अतः मुमुक्ष मोक्षगामी भव्य जीवों को चाहिए कि वे आज अपनी चाल सीधी बनाए। सरलता से चलना शुरु करें।

माया का शब्दार्थ—

"माया" दो अक्षर का यह शब्द क्या कहता है ? यह शब्द भी अपने अन्दर कुछ रहस्य को छिपाए हुए है। यह संस्कृत शब्द है। 'मा' और 'या' इन दो के संयोजन से बना है। 'मा' शब्द निषेध अर्थ में है। मा वद=मत बोलो, मा गच्छ=मत जाओ, मा भक्ष=मत खाओ, यहां 'या' धातु है। 'या-प्रापणे' अर्थ में धातु है। अर्थात् 'या' का अर्थ हुआ जाना-पहुंचना-गति करना। और आगे निषेध वाची शब्द 'मा' है। यह कहता है कि-'मा'-'या'=मत जाओ ऐसा मत चलो, इस तरह मत पहुंचो। जो टेढी-मेढी-माया से भरी हुई कुटील चाल है इस तरह मत चलो, इस मायावी गति से मत जाओ। इस तरह थोडी बारिकाई से देखिए 'माया' जैसा दो अक्षर का बना हुआ शब्द भी हमको कितनी गंभीर रहस्य भरी बात कह रहा है। कितनी अच्छी और कितनी ऊंची बात कह रहा है ? यह कितना महत्वपूर्ण उपदेश है। और बना हुआ 'माया' शब्द छोटा है लेकिन इसका स्वरूप कितना बडा है। माया-कपट करने वाले

जीवों को सीधी-उर्ध्व गति न होकर संसार की अन्य तिर्यंचादि गतियों में जन्म होता है। जाना पडता है। अतः जब भी मोक्ष में जाना होगा तो पहले से सोधा चलना शिखना ही होगा। और यह शिखने के लिए आप को १०बार, २० बार-१०० बार सिद्धाचल की जात्रा करनी चाहिए, जरूर जाइए-लेकिन सिधा चलना भी शिखिए। अब वक्रता-जडता छोडना भी शिखीए।

माया से बचने का एक ही उपाय है—

तदार्जवमहौषध्या जगदानन्दहेतुना।
जयेज्जगद्द्रोहकरीं मायां विषधरीमिव॥

औषधीयों से जैसे रोग मिटाते हैं, उसी तरह माया के रोग को मिटाने के लिए एक मात्र औषधी है-"आर्जव भाव"। अर्थात् सरल स्वभाव। बिना माया कपटका सीधा-सादा सरल भद्रिक स्वभाव। दशप्रकार के धर्म में 'आर्जव' धर्म की बात कही है। भद्रिकता का स्वभाव निष्कपट वृत्ति का स्वभाव ही ऊंचा धर्म है। बालक का जैसा सरल-निष्कपट स्वभाव है वैसा हम हमारा बनाएं। एक छोटे बालक को माया-कपट करना नहीं आता है। वह नादान है, सरल है, सीधा है। निष्कपट है। ऐसे अच्छे सीधे सादे सरल स्वभावी बनने की आवश्यकता है। आज हमारे में कुटीलता, कपटवृत्ति, मायावी वृत्ति जो भरी पडी है, माया जो हमारी आंख में भरी पडी है, किसी तरह इसे निकालनी ही चाहिए। इस श्लोक में माया को विषधरी-नागन की उपमा दी है। जो जगत् का द्रोह

करने वाली है। संसार के जीवों के साथ द्रोह करने वाली है ऐसी माया को छोडकर उसके स्थान पर आर्जव भाव की भद्रिकता, सरलता की स्थापना करें जो जगत् के आनंद की हेतु है। आपकी सरलता से दुसरे को आनन्द होगा। और मायावी वृत्ति को दुःख होगा। इसलिए आर्जवता की महान औषधी से माया का यह रोग मिटाना ही श्रेष्ठ चिकित्सा है। श्री महावीर प्रभु ने कहा–**'मायं चाज्जवभावेण"** माया को आर्जवभाव से ही जीतनी चाहिए। इसके बिना दुसरा कोई उपाय नहीं हैं। कोई अन्य विकल्प नहीं है।

यदि आप यह चाहते हैं कि मुझे कोई न ठगे। मैं किसी से ठगा न जाउं। तो इसका उपाय यही है कि आज से ही आप यह प्रतिज्ञा करलें कि मैं किसी को नहीं ठगुंगा। कैसी भी माया-कपट करके मैं कभी भी किसी को नहीं ठगुंगा। तो आपको कभी भी कोई नहीं ठगेगा। इस बात पर विश्वास रखीए। तो आपके उपर भी कोई विश्वास रखेगा। हमेशा सीधे-सादे-सरल-भद्रिक–निष्कपटी जीव पर हजारों लोग विश्वास रखते हैं। लेकिन एक मायावी हजारों लोग कभी भी विश्वास नहीं रखेंगे। अतः आप यदि किसी को नहीं ठगेंगे तो आपको कोई नहीं ठगेगा। लेकिन आप ऐसा सोचें कि मैं भले ही हजारों को ठगुं, लेकिन मुझे कोई न ठगे। यह तो कभी भी नहीं बनेगा संभव ही नहीं है। मायावी कितना भी चतुर क्यों न हो लेकिन एक दिन उसे भी ठगने वाले मिल ही जाते हैं। मायावी स्वयं दुसरों की माया का भोग बनता है। ठगने वाला एक दिन ठगा जाता है! अतः आज से सरलता–ऋजुता का स्वभाव

बनावें यही हमारे लिए श्रेयस्कर है। स्वभाव आप जैसा चाहें वैसा बना सकते हैं। बचपन से यदि बालक को माया कपट करते हुए पकडा जाय, उसे सुधारने का प्रयत्न किया जाय तो बालक जरूर सुधर सकता है। और अपनी माया जाल की वृत्ति को सरल बना सकता है। सरलता में दुसरे हजार गुणों को आकर्षित करने की चुंबकीय शक्ति पडी हुई है। यही धर्म है। और इसी में धर्म की पात्रता है। यही आत्मा के लिए कल्याणकारक है। जबकि माया दुःखदायि है। कर्म बंधाने वाली है। पाप कारक स्वयं पापस्थान है। माया हजार पापों का मूल घर है अतः माया त्याज्य है। त्याग करने योग्य है।

माया का त्याग बडा मुश्किल है—

क्रोध का त्याग करना आसान है, मान का भी त्याग करना आसान है लेकिन माया का त्याग करना बडा कठिन है। जैसे स्त्रीयां माया–कपटवृत्ति का त्याग नहीं कर सकती और इतना ही नही दीक्षा लेकर साध्वी बनने के बाद भी मायावी वृत्ति यदि नहीं जाती है तो बहुत बडा नुकशान करती है। उपाध्यायजी यशोविजय-जी महाराज तो यहां तक कहते हैं कि ... नग्न रहना आसान है, मासक्षमण करना आसान है, वर्षों तक रसास्वाद का त्याग करके आयंबिल का तप करना आसान है, केश का लोच करना भी आसान है, और यहां तक कि ब्रह्मचर्य का पालन करना भी आसान है मगर माया का त्याग करना, सर्वथा मायावी वृत्ति का त्याग करना बडा कठीन है। उसमें भी मन से मायावी वत्ति का विचार भी न करना,

वचन योग से माया युक्त भाषा न बोलना, और काया से मायावी प्रवृत्ति भी न करना बहुत ही मुश्कील है। नौवे अनिवृत्ति बादर गुणस्थानक पर पहुंचने के बाद वहां माया का सर्वथा सर्वांश त्याग कर सकते हैं। हां जरुर कठीन है फिर भी पुरुषार्थ-प्रयत्न करके हम आगे बढ सकते हैं। आज मानों सर्वथा-सर्वांश में त्याग न भी कर सकें तो भी हम अल्पांश में कुछ अंश में तो जरुर कमकर सकते हैं। आप पूछेंगें माया को कैसे कम करें? घरमें चोर हो तो डंडा मार कर भी निकाल सकते हैं। माया को तो डंडा मार नहीं सकते,तो क्या करें? आपकी बात सही है।अंधकार को घर में से भगाना है तो अंधकार को डंडा नहीं मारते। उसके पीछे नहीं पडते। परन्तु घर में छोटा सा दीपक जला देते हैं और प्रकाश होते ही अंधेरा एक क्षण में अदृश्य हो जाता है। यही चमत्कार या जादु यहां पर भी करना है। आज से प्रतिज्ञा करें कि हम जीवन में कभी भी माया-कपट नहीं करेंगे। जिस किसी के साथ जब भी काम पडेगा तो सरलता से बात करेंगे! स्वभाव में सरलता रखेंगे सीधी-सादी-सरल भाषा का प्रयोग करेंगे। जो भी हो अपनी तरफ से पेट में पाप न रखते हुए, दिल में दम्भ न रखते हुए साफ-साफ-स्पष्ट बात करेंगें। कैसे भी निमित्त में, प्रसंग पडने पर किसी से भी मांगने में साफ-साफ स्पष्ट इच्छा व्यक्त करेंगे। मन खोल कर बात करेंगे। दिल में कुछ छिपाकर बात नहीं करना है। "सादा जीवन उच्च विचार" का सिद्धान्त अपनाना काफी अच्छा है। मनुष्य के स्वभाव की सरलता यह बहुत बडा गुण है। जीवन का किंमती आभुषण है। जानबूझ-

कर कृत्रिम रूप से माया कपट नहीं करना चाहिए। नहीं ···नहीं ··· साहेब ! सीधे-सादे का यह जमाना नहीं है। सीधे-सादे को तो लोग घोल के पी जाते हैं। नहीं ऐसी बात भी मत कीजिए। सीधा-सादा आदमी भी दिमाग का कच्चा, मंदमति तो है नहीं। फिर क्यों कोई बना जाय? नहीं। सरलता रखना नुकशान कारक नहीं है। लाभकारक ही है। पुरूषार्थसाध्य है। प्रयत्न से आदत गिर सकती है। सरलता का ही स्वभाव बनाना अच्छा है।

संसार के अनन्त जीव माया–कपट का त्याग करके ···सरल–स्वच्छ–और भद्रिक–आर्जव गुणवाले ऋजुस्वभावी बनें यही प्रभु चरणों में प्रार्थना·····

卐 निष्कषाया भवन्तु जीवाः 卐

श्री पर्युषण महापर्व में प्रतिज्ञा

पूज्य गुरुदेव श्री के उत्साही जोशीले प्रवचन को सुनकर पर्युषण महापर्व में सेंकडो भाविक भाई–बहनों ने निम्नलिखित प्रतिज्ञाएं ली है।

*** आजीवन मांसाहारी होटल में नहीं जाना।**

*** सप्तव्यसन में शराब आदि का त्याग।**

*** अनन्तकाय–जमीकन्द का त्याग।**

*** मांस-मच्छी-अंडे एवं उससे बनी वस्तु का सर्वथा त्याग।**

*** जिन मंदिर में दर्शन–पूजा करना**

श्री उदयपुर जैन श्वेतांबर मूर्तिपूजक श्री संघ के -उपक्रम में चलती हुई- **रविवारीय सचित्र व्याख्यानमाला में प. पू. मुनिराज श्री अरुणविजयजी** महाराज की ग्यारहवें प्रवचन पुस्तिका उदयपुर निवासी महामंत्र आराधक स्व. थानेदार सा. **श्री कन्हैयालालजी तलेसरा** की पुण्यस्मृति में पू मातुश्री सवनाथकुंवर तलेसरा की प्रेरणा से सुपुत्र दलपतसिंह, पुत्री मोहना, दिलिप मन्जु, सरोडा, पौत्र अनिल, पौत्रीइन्द्र आदि समस्त तलेसरा परिवार के

सौजन्य से एवं

धर्मश्रद्धालु आराधक सुश्रावक श्रा स्व. **बोहतलाल कन्हैयालालजी बापना** की पुण्य स्मृति में माताजी छगनबाई की प्रेरणा से सुपुत्र दिवानसिंह, महेन्द्रसिंह एव संपतकुमार आदि बापना परिवार के सौजन्य से

उपरोक्त दोनों दानवीर दातारों के उदार सौजन्य से संघ ने है ।

Serving JinShasan
090444
gyanmandir@kobatirth.org

मुद्रक : ऋषभ मुद्रणालय, .)